शिवभक्त महर्षि अगस्त्य

हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य में अगस्त्य ऋषि के महान् कर्मों का जगह-जगह वृत्तान्त प्राप्त होता है। यों तो इनके अनेक अद्‌भुत कर्म हैं तथापि इनमें दो काफी प्रसिद्ध हैं-विन्ध्याचल पर्वत को शान्त करना तथा समुद्र को सोख लेना। 'अगस्त्य' नाम इनके कर्म के आधार पर ही रक्खा गया है। 'अगं पर्वतं स्तम्भयति इति अगस्त्यः'-जो 'अगं' अर्थात् पर्वत को स्तंभित कर दे, उसे अगस्त्य कहते हैं। इन्होंने ही रामचन्द्रजी को रावण पर विजय प्राप्त करने हेतु दिव्यास्त्र, भगवान् शंकर की भक्ति से महापाशुपतास्त्र आदि अस्त्रों की प्राप्ति की प्रेरणा तथा आदित्यहृदय स्तोत्र प्रदान किया था। इन्होंने कालकेय नामक असुरों के दमन के निमित्त सम्पूर्ण समुद्र का पान कर लिया था तथा वातापि एवं इल्वल नामक असुरों को अपनी शक्ति से भस्म कर दिया था। ऐसे अद्‌भुत कर्मों को करनेवाले महात्मा अगस्त्य न केवल अपने पिछले जन्म में अपितु वर्तमान जन्म में भी भगवान् शिव की उपासना में अनुरक्त थे। फलस्वरूप उन्हें उपर्युक्त तेज की प्राप्ति हुई थी।

प्राचीन काल में प्रभास क्षेत्र में स्थित वैश्वानरेश्वरलिंग-मंदिर के भीतर किसी तोते ने घोसला बना रक्खा था। उसमें अपनी स्त्री के साथ रहकर उसने दीर्घकालतक तपस्या की। घोसले में आने-जाने के कारण वे दोनों दम्पत्ति प्रतिदिन वैश्वानर की अनेक परिक्रमा कर लेते थे। काफी समय के पश्चात् उन दोनों की मृत्यु हो गयी। वैश्वानर की परिक्रमा तथा दर्शन के प्रभाव से वे दोनों इस पृथ्वी पर अपने पूर्वजन्म की बातों का स्मरण रखनेवाले ब्राह्मण-दम्पत्ति के रूप में पैदा हुए। स्त्री का नाम लोपामुद्रा और पुरुष का नाम अगस्त्य हुआ। कालान्तर में इस दम्पत्ति ने परम सिद्धि प्राप्त की। अपने पूर्व शरीर के वृत्तान्त को याद करके महात्मा अगस्त्य ने कहा है कि 'जो मनुष्य वैश्वानेश्वर की परिक्रमा करके उनका दर्शन करता है, वह निश्चय ही सिद्धि को प्राप्त होता है।'

एक समय देवर्षि नारद नर्मदा के जल में स्नान और श्रीॐकारनाथजी का पूजन कर जब आगे बढ़े तब उन्हें विन्ध्याचल पर्वत दिखायी दिया। नारदजी को दूर से आते देख विन्ध्यगिरि ने पृथ्वी पर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया। नारदजी दोनों हाथों से उसे उठाकर आशीर्वाद से प्रसन्न करके उसके दिये हुए आसन पर बैठे। जब मुनि विश्राम कर चुके, तब विन्ध्यगिरि ने कहा-'मुने! आपके चरणों की धूलि पड़ने से पूर्वजन्मों के किये हुए मेरे चिरसंचित पुण्य आज ही फलीभूत हुए हैं।'

विन्ध्यगिरि की यह बात सुनकर नारदजी कुछ लम्बी सांस खींच कर रह गये। तब विन्ध्य

ने कहा–'विप्रवर! मुझे अपने उच्छ्वास का कारण बताइये।' नारदजी ने मन–ही–मन सोचा–बढ़ते हुए अभिमान का संसर्ग किसी के लिये बड़प्पन का कारण नहीं है। अत: आज विन्ध्यगिरि का बल देखना चाहिये। यों सोचकर मुनि बोले–'पर्वतों में श्रेष्ठ मेरुगिरि तुम्हारा अपमान करता है, इसीलिये मैंने लंबी सांस खींची है और यह बात तुझसे बता दी है। तुम्हारा कल्याण हो।' ऐसा कहकर नारद मुनि आकाश–मार्ग से चले गये। मुनि के जाते ही विन्ध्याचल अत्यन्त उद्विग्नचित्त हो बड़ी चिन्ता में पड़ गया और मन–ही–मन सोचने लगा–क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे मेरुपर्वत को परास्त करूँ। ग्रह, नक्षत्र और तारागणों के साथ भगवान् सूर्य मेरु को अधिक बलवान् मानकर प्रतिदिन उसकी प्रदक्षिणा करते हैं।

ये सब बातें सोचकर विन्ध्यगिरि ऊँचाई की ओर बढ़ने लगा, मानो वह अपने शिखरों से अनन्त आकाश का अन्त कर देना चाहता हो। गिरिराज विन्ध्य सूर्य का मार्ग रोककर ही कुछ स्वस्थ सा हुआ।

तदनन्तर अन्धकार का नाश करनेवाले भगवान् सूर्य उदयाचल पर्वत पर उदित हुए और क्रमश: दक्षिण दिशा की ओर चले। किन्तु जब उनके घोड़े आगे न बढ़ सके, तब अनूरु(अरुण) नामक सारथि ने सूचित किया– 'भानुदेव! अभिमान से ऊँचे उठा हुआ यह विन्ध्यपर्वत आकाश का मार्ग रोककर खड़ा है। आप जो मेरुगिरि की प्रदक्षिणा करते हैं, उसके कारण यह विन्ध्यपर्वत मेरु पर्वत से द्वेष रखता है। अनूरु की बात सुनकर सूर्यदेव ने मन–ही–मन सोचा–'अहो आकाश का मार्ग भी रोका जाता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है।' जो आधे पल में दो हजार दो सौ दो योजना चलते हैं, वे सूर्य भी दैववश एक ही जगह अधिक समयतक रुके रह गये। इस प्रकार दीर्घकालतक प्रचण्ड रश्मि सूर्य के ठहर जाने से पूर्व और उत्तर दिशा में रहनेवाले जीव उनकी किरणों के ताप से सन्तप्त हो बहुत व्याकुल हो गये। दक्षिण और पश्चिम के लोग लेटे हुए ही ग्रह तथा नक्षत्रोंसहित आकाश को देखने लगे। वे सोचते थे 'सूर्य का दर्शन नहीं हुआ, इसलिये यह दिन नहीं है और रात भी नहीं है; क्योंकि चन्द्रमा अस्त हो गये। अत: यह कौन–सा समय है, इसका पता नहीं चलता।' पृथ्वी का स्वाहा(देवयज्ञ), स्वधा(पितृयज्ञ) और वषट्कार(ब्रह्मयज्ञादि) का सर्वथा अभाव हो गया। सूर्यदेव की गति रुक जाने से तीनों लोक स्तब्ध हो उठे। जो जहाँ था, वहीं चित्रलिखित–सा रह गया। एक ओर तो रात के अन्धेरे से और दूसरी ओर सूर्य की गर्मी से बहुत से जीवों की मृत्यु हो गयी। समस्त चेतन जगत् भय से इधर–उधर भागने लगा। यह अवस्था देख सब देवता ब्रह्माजी* की शरण में गये और नाना प्रकार की स्तुतियों द्वारा उनके

* देवीभागवत के दसवें स्कंध के अनुसार देवगण ब्रह्माजी की बजाय विष्णुजी के पास गये और विष्णुजी ने भी वही सलाह दी जो ब्रह्माजी ने दी थी। यह अन्तर शायद कल्पभेद के कारण है।

गुणगान करने लगे।

देवताओं की स्तुति से संतुष्ट हो ब्रह्माजी देवताओं से बोले–'विन्ध्याचल मेरु पर्वत से डाह करता है, इसलिये उसने सूर्य का मार्ग रोक रक्खा है। इसी संकट को टालने के लिये तुम लोग मेरे पास आये हो। अतः इसके लिये मैं तुम्हें एक उत्तम उपाय बतलाता हूँ। मित्रावरुण के पुत्र महर्षि अगस्त्य बड़े भारी तपस्वी हैं। वे काशी में भगवान् विश्वनाथ में मन लगाकर बड़ी भारी तपस्या कर रहे हैं। वहाँ जाकर उन्हीं से इस कार्य के लिये याचना करो। वे तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध करेंगे।'

काशीपुरी में अगस्त्य मुनि अपने नाम से शिवलिंग की स्थापना करके उसके सामने कुण्ड निर्माण करा कर वहाँ शतरुद्रिय सूक्त का स्थिर चित्त से जप करते थे। उनको दूर से ही देखकर देवता परस्पर इस प्रकार कहने लगे–'अहो! इस आश्रम के चारों ओर हिंसक जीव भी सात्त्विक दिखायी देते हैं। अपने स्वाभाविक बैर को भी त्यागकर प्रेमपूर्वक रहते हैं।' ऐसा कहते हुए देवताओं ने मुनि की पर्णकुटी देखी, जो होम एवं धूप की सुगन्ध से सुवासित तथा बहुत से ब्रह्मचारी विद्यार्थियों से सुशोभित थी। पर्णकुटी के आँगन को देखकर सब देवताओं ने नमस्कार किया। महर्षि अगस्त्य समाधि से उठकर कुशासन पर बैठे थे। देवताओं को देखकर मुनि उठकर खड़े हो गये और उन सबको यथायोग्य आसन पर बैठाया। आशीर्वाद से उनका अभिनन्दन किया और वहाँ आने का कारण पूछा।

देवताओं की ओर से बृहस्पतिजी ने कहा–'यद्यपि कुछ भी आप से अविदित नहीं है तथापि देवता लोग जिस उद्देश्य से यहाँ आये हैं, वह मैं बतलाता हूँ। मुने! विन्ध्य नामक पर्वत मेरु गिरी से द्वेष के कारण बढ़कर इतना ऊँचा हो गया है कि उसने सूर्यदेव का मार्ग रोक लिया है, उसकी इस वृद्धि को आप रोकिये।' देवगुरु का यह वचन सुनकर महामुनि अगस्त्य ने क्षणभर के लिये चित्त को एकाग्र किया और 'बहुत अच्छा, आप लोगों का कार्य सिद्ध करूँगा।' ऐसा कहकर देवताओं को विदा किया। तत्पश्चात् वे पुनः कुछ चिन्तन करते हुए ध्यानमग्न हो गये।

तदनन्तर ध्यानद्वारा भगवान् विश्वनाथजी का दर्शन करके मुनीश्वर अगस्त्य लोपामुद्रा से इस प्रकार बोले–'प्रिये! काशी को लक्ष्य करके तत्त्वदर्शी मुनियों ने यह कहा है कि मोक्ष की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को कभी अविमुक्त क्षेत्र का त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह सदा सुलभ नहीं है।' इसके पश्चात् अगस्त्य मुनि कालभैरवजी के पास गये और प्रणाम करके बोले–भगवन्! आप काशीपुरी के स्वामी हैं, अतः मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। कालराज! मुझ निरपराध पर किस कारण आपकी यह अपराधदृष्टि हो गयी? क्यों आप मुझे काशी से अन्यत्र जाने का अवसर देते हैं? यक्षराज! आप क्यों मुझे काशी से बाहर भेजते हैं?–इस प्रकार विरही की भाँति विलाप

करके 'हा काशी! हा काशी!' की रट लगाते हुए अगस्त्य मुनि अपनी धर्मपत्नी लोपामुद्रा के साथ चले और अपनी सिद्धि के बल पर आधे पल में उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ विन्ध्यपर्वत ऊँचे आकाश को रोककर खड़ा था। मुनि ने अपने सामने ही खड़े हुए विन्ध्याचल पर दृष्टिपात किया। पर्वत भी पत्नीसहित अगस्त्य मुनि को अपने आगे खड़े देखकर काँप गया। वे तपस्या और क्रोध से तथा काशी के विरह से प्रकट हुई त्रिविध अग्नियों से प्रलयंकर अनल की भाँति अत्यन्त प्रज्वलित से जान पड़ते थे। उनपर दृष्टि पड़ते ही विन्ध्यपर्वत इतना छोटा हो गया मानो धरती में समा जाना चाहता हो। छोटा रूप धारण करके वह बोला–'भगवन्! मैं आपका सेवक हूँ, मेरे योग्य सेवा के लिये आज्ञा देकर मुझपर कृपा करें।'

अगस्त्यजी बोले–विन्ध्य! तुम साधुपुरुष हो, बुद्धिमान् हो और मुझे अच्छी तरह जानते हो। देखो, जबतक यहाँ पुनः लौटकर मेरा आना न हो, तबतक तुम अत्यन्त लघु रूप में ही रहो। यों कहकर मुनि ने अपने पदार्पण से दक्षिण दिशा को सनाथ किया। मुनिवर अगस्त्य के चले जाने पर विन्ध्यपर्वत ने मन–ही–मन विचार किया– आज अगस्त्य मुनि ने जो मुझे शाप नहीं दिया है, इससे मैं समझता हूँ कि मेरा पुनः नया जन्म हुआ है। उस समय काल का ज्ञान रखनेवाले अरुण सारथि ने अपने घोड़ों को आगे बढ़ाया। पहले की भाँति सूर्यदेव के संचारण से सम्पूर्ण जगत् पूर्णतः स्वस्थ हुआ। आज, कल अथवा परसोंतक मुनि अवश्य आवेंगे मानो इसी चिन्ता के महाभार से दबा हुआ विन्ध्यगिरि ज्यों का त्यों स्थित है, परन्तु आजतक न तो अगस्त्य मुनि आये और न पर्वत बढ़ा।

मुनिवर अगस्त्यजी गोदावरी के तटपर विचरते हुए भी काशी–विरहजनित महान् सन्ताप को नहीं छोड़ सके। वे पत्नीसहित विचरते हुए कोलापुरनिवासिनी महालक्ष्मीजी के समीप गये और उन्हें प्रणाम कर स्तुति की। स्तुति सुनकर लक्ष्मीजी ने प्रसन्न होकर अगस्त्यजी को पुनः काशी की प्राप्ति का वरदान दिया। परोपकारजनित पुण्य के प्रभाव से ही साक्षात् महालक्ष्मी का दर्शन करके मुनिवर अगस्त्य कृतार्थ हो गये। वहाँ से आगे बढ़ने पर मुनि ने श्रीपर्वत को देखा, जहाँ साक्षात् त्रिपुरारि महादेवजी निवास करते हैं। उसे देखकर मुनि के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपनी पत्नी से कहा–'प्रिये! देखो। यह श्रीशैल शिखर दिखायी देता है, उसके दर्शन से मनुष्यों का इस संसार में पुनर्जन्म कभी नहीं होता। यह सम्पूर्ण पर्वत शिवमय है, अतः इसकी परिक्रमा करनी चाहिये।' श्रीपर्वत की परिक्रमा के पश्चात् अगस्त्यजी ने कार्तिकेयजी के सुन्दर एवं विशाल वन को देखा तथा वहाँ जाकर कार्तिकेयजी का दर्शन किया। कार्तिकेयजी से विस्तार से काशी की महिमा सुनकर लोपामुद्रासहित अगस्त्य मुनि स्कंदजी को प्रणाम कर संध्योपासना के लिये चले गये।

स्कंदपुराण (काशीखण्ड) की उपर्युक्त कथा मामूली परिवर्तन के साथ श्रीमद्देवीभागवत

तथा संक्षिप्त रूप में पद्मपुराण आदि ग्रन्थों में पायी जाती है। स्कंदपुराण में ही नागरखण्ड के अन्तर्गत अगस्त्यजी की उपर्युक्त कथा का एक दूसरा रूप भी प्राप्त होता है जो इस प्रकार है।

हाटकेश्वरक्षेत्र की महिमा के प्रसंग में यह कथा आयी है। हाटकेश्वरक्षेत्र में महर्षि अगस्त्य का आश्रम है जहाँ साक्षात् भगवान् शिव निवास करते हैं। वहाँ चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तिथि को स्वयं भगवान् सूर्य आकर देवताओं के स्वामी महादेवजी की पूजा करते हैं। जो कोई भी मनुष्य वहाँ भक्तिपूर्वक भगवान् शिव की पूजा करता है, वह उत्तम लोकों में जाता है। जिस समय विन्ध्याचल ने बढ़कर सूर्यदेव का मार्ग रोक लिया था, उस समय वे(सूर्यदेव) ब्राह्मण का रूप धारण करके चमत्कार नामक नगर के क्षेत्र में महर्षि अगस्त्य के आश्रम पर गये और बोले–'मुनिश्रेष्ठ! आज मैं आपके यहाँ अतिथि के रूप में आया हूँ।'

अगस्त्यजी ने कहा–मुने! स्वागत है। आपको जो अभीष्ट हो, वह वस्तु बतावें; मैं उसे दूँगा। ब्राह्मणरूपधारी सूर्य बोले–ब्रह्मन् मैं सूर्य हूँ। पर्वतों में श्रेष्ठ सुमेरु के प्रति ईर्ष्या होने के कारण विन्ध्यपर्वत मेरा मार्ग रोककर खड़ा है; इसलिये आप साम आदि उपायों से उस पर्वत को रोकें। जिससे मेरी गति भंग होने के कारण अतिकाल न होने पावे।

अगस्त्यजी ने कहा–दिवाकर! मैं उस बढ़ते हुए पर्वत को रोक दूँगा। आप अपने स्थान को पधारिये। उनकी आज्ञा पाकर सूर्यदेव अपने लोक को चले गये। इधर अगस्त्य मुनि शीघ्र ही जाकर विन्ध्याचल से आदरपूर्वक बोले–'पर्वतश्रेष्ठ! तुम मेरी आज्ञा से शीघ्र ही लघु रूप धारण करो। इस समय मेरा विचार दक्षिण के तीर्थों में स्नान करने को हुआ है। किन्तु यह कार्य तुम्हारे ही अधीन है, इसलिये जैसा उचित जान पड़े वैसा करो।' महर्षि अगस्त्य का यह वचन सुनकर विन्ध्यपर्वत तत्काल नीचा हो गया। तब उस पर्वत को पार करके दक्षिण किनारे पहुँचकर अगस्त्यजी ने कहा–'गिरिश्रेष्ठ! जबतक मैं पुनः लौट न आऊँ, तबतक तुम्हें सदा इसी स्थिति में रहना चाहिये। अगस्त्य मुनि के शाप से डरा हुआ वह पर्वत पुनः उनके लौट आने की प्रतीक्षा में बढ़ नहीं सका। अगस्त्य मुनि तभी के गये हुए आजतक इस मार्ग से नहीं लौटे। वे अब भी दक्षिण दिशा में ही स्थित हैं। उन्होंने लोपामुद्रा को भी वहीं बुला लिया और सूर्यदेव का आवाहन करके आदर–पूर्वक कहा–'सूर्यदेव! आपके कहने से मैंने अपना आश्रम छोड़ दिया है परंतु वहाँ मैंने जो शिवलिंग स्थापित किया है, उसकी नित्यपूजा आपको करनी चाहिये।' सूर्यदेव बोले–मुने! मुझे स्वीकार है, मैं आपके द्वारा स्थापित शिवलिंग का पूजन करूँगा और दूसरा कोई भी जो पुरुष उस दिन उस शिवलिंग की पूजा करेगा, वह मेरे लोक में आकर पुण्य का भागी बनेगा।

पद्मपुराण आदि में अगस्त्य मुनि द्वारा समुद्र के पान की कथा पायी जाती है। देवराज इन्द्र

के द्वारा वृत्रासुर के मारे जाने पर बड़े-बड़े असुर(कालकेय) भयभीत हो अगाध समुद्र में छिप गये। वहाँ एकत्रित होकर सब-के-सब तीनों लोकों का नाश करने के लिये प्रयास करने लगे। वे रात में कुपित होकर निकलते और पवित्र आश्रमों तथा मंदिरों में जो भी मुनि मिलते, उन्हें खा जाते थे। वसिष्ठ, भरद्वाज, एवं च्यवन आदि मुनियों के आश्रमों में निवास करनेवाले हजारों मुनियों को उन्होंने अपना ग्रास बना लिया। इस प्रकार रात में वे मुनियों का संहार करते और दिन में समुद्र के भीतर घुस जाते थे। इस तरह बहुत दिनोंतक उन्होंने मुनियों का भक्षण जारी रक्खा, किन्तु लोगों को इन हत्यारों का पता नहीं चला। उस समय कालकेयों के भय से पीड़ित होकर सारा जगत् धर्म-कर्म की ओर से निरुत्साह हो गया। स्वाध्याय बन्द हो गया। यज्ञ और उत्सव समाप्त हो गया। सभी लोग भयभीत होकर आत्मरक्षा के लिये दसों दिशाओं में दौड़ने लगे। किसी ने गुफाओं में तो किसी ने झरनों में शरण ली। इस प्रकार यज्ञ और उत्सवों से रहित होकर जब सारा जगत् नष्ट होने लगा, तब इन्द्रसहित सभी देवता भगवान् नारायण की शरण में गये और स्तुति करने लगे।

स्तुति सुनकर भगवान् विष्णु बोले-'देवताओं! कालकेय नाम से विख्यात जो दानवों का समुदाय है, वहा बड़ा निष्ठुर है। उन दानवों ने ही मिलकर सम्पूर्ण जगत् को कष्ट पहुँचाना आरंभ किया है। वे इन्द्र के द्वारा वृत्रासुर को मारा गया देख अपनी जान बचाने के लिये समुद्र में घुस गये थे। भयंकर समुद्र में रहकर वे जगत् का विनाश करने के लिये रात में मुनियों को खा जाते हैं। जबतक वे समुद्र के भीतर छिपे रहेंगे, तबतक उनका नाश होना असम्भव है, इसलिये अब तुम लोग समुद्र को सुखाने का कोई उपाय सोचो।

भगवान् विष्णु के ये वचन सुनकर देवता ब्रह्माजी के पास आकर वहाँ से महर्षि अगस्त्य के आश्रम पर गये। वहाँ पहुँचकर अगस्त्यजी की स्तुति कर उनसे समुद्र पी जाने को कहा क्योंकि ऐसा करने पर ही देवद्रोही कालकेय दानवों का संहार संभव है। महर्षि ने कहा-'बहुत अच्छा। मैं आप लोगों की इच्छा पूर्ण करूँगा।' ऐसा कहकर वे समुद्र के पास गये और समुद्र को पी जाने की इच्छा से देवताओं को लक्ष्य करके कहा-'देवगण! संपूर्ण लोकों का हित करने के लिये इस समय मैं इस महासागर को पिये लेता हूँ; अब आप लोगों को जो कुछ करना हो, शीघ्र ही कीजिये।' यों कहकर वे सबके देखते-देखते समुद्र को पी गये। समुद्र के जलशून्य हो जाने पर कालकेयों का देवताओं ने संहार कर दिया। दानवों के मारे जाने के पश्चात् देवताओं ने महर्षि अगस्त्य से समुद्र को पुनः भर देने की प्रार्थना की। अगस्त्यजी ने देवताओं से कहा कि जिस जल का मैंने पान किया था उसे अब पचा लिया है। अतः अब समुद्र को भरने के लिये आप लोग कोई दूसरा उपाय सोचें। तदनन्तर समुद्र को भरने के विषय में परामर्श लेने के लिये देवगण ब्रह्माजी के पास

पहुँचे। ब्रह्माजी ने उनसे कहा–तुम सबलोग अपने–अपने स्थान को लौट जाओ, अब बहुत दिनों बाद समुद्र अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त करेगा। महाराज भगीरथ अपने कुटुम्बीजनों को तारने के लिये गंगाजी को धरती पर लायेंगे और उन्हीं के जल से पुनः समुद्र को भर देंगे।

महर्षि अगस्त्य के महान् कृत्यों में से एक का वर्णन[1] वाल्मीकीय रामायण में इस प्रकार है। यह कथा अरण्यकाण्ड में पायी जाती है। दक्षिण दिशा में वातापि और इल्वल नामक राक्षसों के उत्पात से ऋषियों ने रहना छोड़ दिया था। परन्तु अगस्त्यजी ने उनका दमन करके दक्षिण दिशा को भी शरण लेने योग्य बना दिया।

एक समय की बात है, पंचवटी के निकट (जहाँ बाद में अगस्त्य आश्रम बना) क्रूर स्वभाव–वाला वातापि और इल्वल नामक राक्षस बंधु एक साथ रहते थे। ये दोनों असुर ब्राह्मणों की हत्या करते थे। निर्दयी इल्वल ब्राह्मण का रूप धारण करके संस्कृत बोलता हुआ जाता और श्राद्ध के लिये ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे आता था। फिर मेष (जीवशाक) का रूप धारण करनेवाले अपने भाई वातापि का संस्कार करके श्राद्धकल्पोक्त विधि से ब्राह्मणों को खिला देता था। वे ब्राह्मण जब भोजन कर लेते, तब इल्वल उच्च स्वर से बोलता–'वातापे! निकलो' भाई की बात सुनकर वातापि भेड़े के समान 'में–में' करता हुआ उन ब्राह्मणों के पेट फाड़–फाड़कर निकल आता था।[1]''

इस प्रकार इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन मांसभक्षी असुरों ने प्रतिदिन मिलकर सहस्त्रों ब्राह्मणों का विनाश कर डाला। उस समय देवताओं की प्रार्थना से महर्षि अगस्त्य ने श्राद्ध में शाकरूप–धारी उस महान् असुर का जान–बूझकर भक्षण किया। तदनन्तर श्राद्धकर्म सम्पन्न हो गया। ऐसा कहकर ब्राह्मणों के हाथ में अवनेजन का जल दे इल्वल ने भाई को संबोधित करके कहा, 'निकलो'। इस प्रकार भाई को पुकारते हुए उस ब्राह्मणघाती असुर से अगस्त्यजी ने हसँकर कहा जिस जीवशाकरूपधारी तेरे भाई राक्षस को मैंने खाकर पचा लिया, वह तो यमलोक में जा पहुँचा है। अब उसमें निकलने की शक्ति कहाँ है।[2] भाई की मृत्यु को सूचित करनेवाले मुनि के इस वचन को सुनकर उस निशाचर ने क्रोधपूर्वक उन्हें मार डालने का उद्योग आरम्भ किया। उसने ज्यों ही अगस्त्यजी पर धावा किया त्यों ही उस मुनि ने अपनी अग्नितुल्य दृष्टि से उस राक्षस को जला डाला। इस प्रकार उसकी मृत्यु हो गयी।

---

1. यह कथा महाभारत आदि अन्य ग्रन्थों में भी पायी जाती है। परन्तु यहाँ पर हम कथा के उस रूप को ही प्रस्तुत करेंगे जो रामायण में पायी जाती है।

2. वातापि को इस प्रकार का वर प्राप्त था कि वह किसी के पेट में जाकर भी भाई के पुकारने पर पेट फाड़कर सही–सलामत वापस आ सकता है बशर्ते वह पेट में जाकर हजम न हो गया हो।

'शिवगीता' में ऋषियों ने दूसरे अध्याय के प्रारंभ में सूतजी से प्रश्न किया है कि 'अगस्त्यजी रामचन्द्र के निकट क्यों आये थे? और किस प्रकार रामचन्द्रजी से विरजा दीक्षा करायी थी? तथा इससे रामचन्द्रजी को किस फल की प्राप्ति हुई।'

उत्तर में सूतजी बोले– 'जिस समय जनककुमारी सीता को रावण ने हर लिया था तब रामचन्द्रजी ने वियोग के कारण बहुत विलाप किया। निद्रा, देहाभिमान और भोजन त्यागकर रातदिन शोक करते हुए भाईसहित प्राण त्याग करने की इच्छा की। अगस्त्यजी ने इन बातों को जानकर रामचन्द्रजी के पास आकर संसार की असारता को समझाते हुए तत्त्वज्ञान की बहुत सी बातें कही। श्रीराम तत्त्वज्ञान की बातें सुन मुनि से बोले– आपने मेरे सन्मुख जो कुछ कहा है वह सब सत्य है तथापि भयंकर प्रारब्ध या दैव का दु:ख मुझे नहीं छोड़ता है। प्रारब्ध ज्ञानी को भी नहीं छोड़ता। अत: आप मेरे हित की बात करें जिससे मेरा यह दु:ख दूर हो।

अगस्त्यजी ने कहा– जिस सीता को मायावी दैत्य(रावण) सागर के बीच में ले गया है जिसके द्वार पर वानरों के यूथों के समान सब देवता बाँध लिये गये हों; जो शिवजी के वर से गर्वित हो सम्पूर्ण त्रिलोकी को भोगता है और भय से रहित है उसे तुम कैसे जीतोगे? उसका पुत्र इन्द्रजीत भी शिवजी के वरदान से गर्वित है, उसके सामने से देवता संग्राम में बहुत बार भाग गये हैं; देवताओं को भय देनेवाला जिसका भाई कुम्भकर्ण बड़ा भयंकर है एवं देव–दानवों द्वारा दुर्गम लंका नामक जिसका दुर्ग करोड़ों चतुरंगिणी सेना से युक्त है; ऐसे रावण को तुम अकेले कैसे जीतोगे?

श्रीरामजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठ मैं क्षत्रिय हूँ और मेरी भार्या को रावण ने हर लिया है। अगर मैं उसे न मारूँगा तो मेरे जीने का क्या लाभ? इसलिये मुझे आपके तत्त्वज्ञान से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। अत: आप सागर लाँघकर युद्ध में रावण को मारने के उपाय को कहिये। आपसे श्रेष्ठ और कोई मेरा गुरु नहीं है।

अगस्त्यजी बोले– अगर आपकी ऐसी इच्छा है तो पार्वती के पति अविनाशी शिवजी की शरण में जायँ। वे प्रसन्न होकर आपको इच्छित फल देंगे। इन्द्रादि देवता, हरि और ब्रह्मा भी जिसको नहीं जीत सके उसे शिवजी के अनुग्रह के बिना तुम कैसे मार सकते हो? इस कारण से मैं तुम्हें विरजामार्ग से दीक्षा देता हूँ जिससे तुम तेज सम्पन्न हो जाओगे। जिसके प्रताप से युद्ध में शत्रुओं को मार कर संपूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर सकोगे।

तदनन्तर अगस्त्यजी ने रामजी को विरजा दीक्षा दी। इस दीक्षा में उन्होंने अनुष्ठान के शुभ काल की चर्चा करते हुए शिवजी के विहित ध्यान का मन्त्र, भूतशुद्धि की विधि, पाशुपतव्रत, हवनसंबंधी बातें, भस्म धारण विधि तथा शिवसहस्रनाम आदि बातों का उपदेश दिया। अन्त में अगस्त्यजी ने कहा कि जो सब वेदों का सार है, जो शिवजी का प्रत्यक्ष करानेवाला है उस शिव

सहस्त्रनाम को, हे राम! दिन-रात जपो। तब भगवान् शिव प्रसन्न होकर महापाशुपत अस्त्र तुमको देंगे जिससे तुम शत्रुओं को मारकर अपनी प्रिया को प्राप्त कर सकोगे।

अगस्त्यजी जब ऐसा कहकर अपने आश्रम को चले गये तब रामगिरि के ऊपर गोदावरी के किनारे पवित्र आश्रम में रामचन्द्रजी ने शिवलिंग स्थापित कर अगस्त्यजी के उपदेशानुसार विरजादीक्षा ले सर्वांग में विभूति लगा तथा रुद्राक्ष धारण कर शिवलिंग को गोदावरी के पवित्र जल से अभिषेक कर वन में उत्पन्न हुए फूलों और फलों से उसकी पूजा करते। वे भस्म लगाते, भस्म पर ही शयन करते, व्याघ्र-चर्म के आसन पर बैठे रात-दिन अनन्य बुद्धि से शिवसस्त्रनाम जपते। एक महीनेतक फलाहार, एक महीनेतक पत्तों का भोजन, एक महीनेतक जलपान और एक महीनेतक पवन के आहार पर रहे। इन्द्रियों को जीतकर शान्त अन्तःकरण से भगवान् शिव का नित्य ध्यान करते चार महीने बीत गये। तदनन्तर उन्हें भगवान् शिव का दर्शन प्राप्त हुआ। दर्शन से कृतार्थ हो हर्ष से गद्गदकण्ठ हो रामजी शिवजी की स्तुति और दिव्य सहस्त्रनाम के उच्चारण से बारंबार प्रणाम करने लगे। प्रणाम करते हुए राम को उठाकर शिवजी ने अपनी गोद में बैठाया तथा उन्हें दिव्य धनुष, अक्षय तरकस और महापाशुपतास्त्र प्रदान किया। तत्पश्चात् शिवजी सभी देवताओं एवं लोकपालों को बुलाकर बोले तुम सब रामचन्द्र को अपने-अपने अस्त्र प्रदान करो। ताकि वे रावण को मार सकें। मैंने रावण को वर दे रखा है कि तू देवताओं से न मरेगा, इसलिये तुम सब युद्ध में वानरों का शरीर धारण कर इनकी सहायता करो। शिवजी की आज्ञा से सभी देवों ने अपने-अपने अस्त्र रामजी को प्रदान किये। तदनन्तर भगवान् शिव ने रामजी से कहा कि किष्किंधा नगर में देवताओं के अंश से बहुत से महाबली दुर्जय वानर उत्पन्न हुए हैं, वे सब तुम्हारी सहायता करेंगे, उनके द्वारा तुम सागर पर सेतु बँधवाना जिससे सभी वानर समुद्र पार कर सकेंगे। इस प्रकार रावण को उसके साथियों सहित मारकर वहाँ से अपनी प्रिया को ले आओ। तदनन्तर शिवजी ने राम को शिवगीता का उपदेश दिया। इस प्रकार अगस्त्यजी की कृपा से न केवल रामजी को दिव्य शस्त्रों की अपितु भगवान् शिव से 'शिवगीता' का भी ज्ञान प्राप्त हुआ।

(उपर्युक्त लेख गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त स्कंदपुराणांक पृ. 544-549, 579-580, 696, 848 तथा 983; संक्षिप्त पद्मपुराण पृ. 66-69; संक्षिप्त देवीभागवत पृ. 674-676; श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण प्रथम खण्ड पृ. 516-517 तथा 1989 में वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित शिवगीता के अध्याय 2-5 पर आधारित है।)